स्व. कल्पेश याज्ञिक को उनके साथी पत्रकार राजेश बादल की श्रध्दांजलि

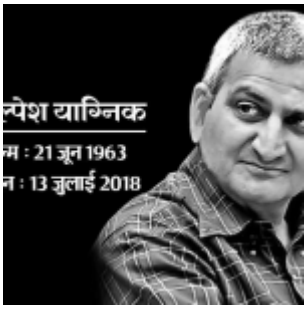

इन्दौर। दैनिक भास्कर के समूह संपादक कल्पेश याग्निक नहीं रहे। गुरुवार रात करीब साढ़े 10 बजे इंदौर स्थित दफ्तर में काम के दौरान उन्हें दिल का दौरा पड़ा। तत्काल उन्हें बॉम्बे हॉस्पिटल ले जाया गया। करीब साढ़े तीन घंटे तक उनका इलाज चला, लेकिन तमाम प्रयासों के बाद भी उनकी स्थिति में सुधार नहीं हुआ। डॉक्टरों के मुताबिक, इलाज के दौरान ही उन्हें दिल का दूसरा दौरा पड़ा। रात करीब 2 बजे डॉक्टरों ने उन्हें मृत घोषित कर दिया। शुक्रवार को इंदौर में उनका अंतिम संस्कार किया गया। भाई नीरज याग्निक ने मुखाग्नि दी।

स्व. याज्ञिक ने अपनी पत्रकारिता की शुरआत इन्दौर से प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक फ्री प्रेस से की थी, उन्हें फ्री प्रेस के संपादक श्री श्रवण गर्ग पत्रकारिता में लाए थे। इसके बाद श्रवण गर्ग जब दैनिक भास्कर में चले गए तो कल्पेश याज्ञिक भी उनके साथ दैनिक भास्कर में आ गए। इसके बाद उन्होंने अपनी धारदार लेखनी और अपनी बनाई टीम के साथ दैनिक भास्कर को एक नया तेवर दिया और इसी तेवर के साथ वे अंतिम साँस तक पत्रकारिता करते रहे।

21 जून 1963 को जन्मे कल्पेशजी 1998 से दैनिक भास्कर समूह से जुड़े थे। 55 वर्षीय याग्निक प्रखर वक्ता और देश के विख्यात पत्रकार थे। वे पैनी लेखनी के लिए जाने जाते थे। देश और समाज में चल रहे संवेदनशील मुद्दों पर बेबाक और निष्पक्ष लिखते थे। प्रति शनिवार दैनिक भास्कर के अंक में प्रकाशित होने वाला उनका कॉलम 'असंभव के विरुद्ध' देशभर में चर्चित था। उनके परिवार में मां प्रतिभा याग्निक, पत्नी भारती, बड़ी बेटी शेरना, छोटी बेटी शौर्या, भाई नीरज और अनुराग हैं।

वरिष्ठ पत्रकार व पूर्व एग्जिक्यूटिव डायरेक्टर, राज्यसभा टीवी ।।

यकीन नहीं आता। भास्कर के समूह संपादक कल्पेश याग्निक का इस तरह जाना। दिनों दिन क्रूर और भयावह हो रहे मीडिया का शिकार एक भावुक संपादक हो गया। काम का असाधारण मानसिक दबाव। कोई कहां तक उठाए। कल्पेश भी कोई दैवीय शक्तियों के साथ काम नहीं कर रहे थे। यह तो होना ही था। हां न होता तो अच्छा होता। यादों की फिल्म चल रही है।

उन दिनों मैं नई दुनिया इंदौर में सह संपादक था। हमारे साथी श्रवण गर्ग ने नई दुनिया छोड़कर फ्री प्रेस जर्नल के साथ जुड़ने का फैसला किया। अखबार शुरू हो गया। शहर की परंपरागत पत्रकारिता में ताजी

हवा का झोंका। इंदौर की छात्र राजनीति उन दिनों स्तरीय और अपने सरोकारों के साथ होती थी। कल्पेश एक बड़े छात्र नेता की विज्ञप्तियां बनाते और समाचारपत्रों में देने जाते थे। श्रवण गर्ग ने प्रतिभा को पहचाना और कल्पेश की खबरें फ्रीप्रेस में छपने लगीं।

मैं इसी बीच नवभारत टाइम्स का संस्करण प्रारंभ करने के लिए वरिष्ठ उप संपादक के तौर पर जयपुर चला गया। लेकिन इंदौर से अटूट रिश्ता बन गया। वहां की सूचनाएं मिलती रहीं। कल्पेश नामक एक नया पत्रकार अच्छा लिखता है। कलम में ताकत है। मैं इंदौर आता तो अक्सर भेंट हो जाती। विनम्र, मृदुभाषी और अपने में खोया रहने वाला सपनीला पत्रकार। जब भी मिलता एक बात जरूर कहता,आप लोगों को पढ़ पढ़ कर पत्रकार बना हूं। पत्रकारिता की लौ देखकर मुझे लगा कि कल्पेश को नवभारत टाइम्स में होना चाहिए। मैंने प्रधान संपादक राजेन्द्र माथुर जी से बात की। वे तैयार हो गए। उन्होंने कहा, पूछो कि पटना संस्करण शुरू हो रहा है। वहां जाना चाहेगा क्या ?

मैं किसी कार्यक्रम में इंदौर गया। अप्सरा रेस्टॉरेंट में हम मिले। मैंने ऑफर दिया। बेहद विनम्रता पूर्वक उसने अस्वीकार कर दिया। मैं उसका चेहरा देखता रहा। कोई ऐसा भी है, जो उस दौर के नवभारत टाइम्स में काम करने के प्रस्ताव को ठुकरा दे। उन दिनों किसी भी हिंदी पत्रकार का सपना ही यही होता था। सदी के महानतम संपादकों में से एक माथुर जी के साथ कार्य याने जिंदगी सफल।

दिन गुजरते रहे। वक्त ने मुझे टेलिविजन की दुनिया से जोड़ दिया। कल्पेश धुनी पत्रकार की तरह प्रिंट में ही काम करते रहे। बीच बीच में या तो मैं फोन कर लेता या कल्पेश का आ जाता। याद है दो हजार नौ में जब उसे नेशनल एडिटर बनाया गया उसके एक या दो दिन बाद मेरे पास दिल्ली में फोन आया। बोला, बड़ी जिम्मेदारी ओढ़ ली है। मैंने कहा, तुम इस चुनौती से पार पाओगे। मैं तुम्हें जानता हूं। समूह संपादक बनने के बाद किसी कार्यक्रम में हम दोनों साथ में थे। मगर उस दिन कल्पेश शायद ज्यादा ही गंभीर था। मैंने पूछा तो मुस्कुरा कर टाल गया। कभी कभी जिंदगी के दर्शन को समेटे उसका स्तंभ पढ़ता तो फोन कर लेता था। अलबत्ता हाल के दिनों में उसके फोन कम आ रहे थे। बीते दिनों मैंने कहा, कैसा चल रहा है कल्पेश ? बोला, उलझ गया हूं। रुटीन काम इतना अधिक है कि अपने लिए टाइम ही नहीं मिलता। एकाध किताब लिखना चाहता हूं। देखिए। कब समय मिलता है।

कोई ऐब नहीं था। सिवाय एक पिपरमेंट चाटने के। पता नही पिपरमेंट की ठंडक उसे किस तरह राहत देती थी- समझ नही पाया। बाकी संयमित जीवन था। नींद नहीं होती थी। तीन बजे सोना और सात बजे उठ जाना। शरीर तो शरीर है। जैसे जैसे उमर बढ़ती है- यह सात या आठ घंटे का विश्राम तो मांगता ही है। चौबीस घंटे हम पत्रकार रहते हैं।

जिन्दगी के तमाम रंगों से महरूम। हमारी अन्य संवेदनाओं के संसार में एक विराट रेगिस्तान अंदर ही अंदर आकार लेता रहता है। जिंदगी की तपती दोपहरी में हम इस रेगिस्तान के सफर में पैर जलाते बढ़ते रहते हैं। एक दिन पैर जबाव देते हैं। हम धराशायी हो जाते हैं। कल्पेश के साथ भी यही हुआ।

जाओ कल्पेश! पांच साल छोटे थे इसलिए पहले जाने का हक तो नहीं बनता था। लेकिन जाओ माफ किया। तुम्हारी यादों की गठरी का जो बोझ हम पर छोड़ गए हो उसके साथ चलना बहुत कठिन है।

अलविदा मेरे भाई!

साभार- http://samachar4media.com/ से